Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

बौद्ध दर्शन में चेतना का स्वरूप

श्रीमति चारु दीक्षित
शोधार्थी, योग विभाग, बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल म.प्र.
डॉ. साधना दौनेरिया
विभागाध्यक्ष, योग विभाग, बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल म.प्र.

Article Info
Volume 5, Issue 4
Page Number : 51-55

Publication Issue :
July-August 2022

Article History
Accepted : 01 July 2022
Published : 20 July 2022

सारांश : चेतना सम्पूर्ण जीव समुदाय के अस्तित्व का प्रमाण है। यह हमारी अनुभूतियों का सार है। चेतना एक बहुत ही गूढ़ व रहस्यमय शब्द है। इसके साथ ही यह शब्द बहुत व्यापक भी है। यद्यपि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भिन्न-भिन्न रूपो में व्याप्त है, परन्तु इसकी वास्तविक अभिव्यक्ति मानव चेतना के उदय के साथ ही हुई। जब से मानव ने अपने अस्तित्व पर विचार करना प्रारम्भ किया, तभी से उसने देखा कि इस सृष्टि में केवल मानव को ही ज्ञानवान् होने की महत्ता प्राप्त है। इस विशेषता ने मानव को सृष्टि में बहुत ऊपर प्रतिष्ठित कर दिया और उसने ब्रह्माण्ड के रहस्यों को खोजना आरम्भ कर दिया। उपनिषदों की तात्विक चर्चाओं (संवादों) में ज्यादातर इस जगत के मूल कारण की चर्चा दृष्टिगोचर होती है। अपनी खोज के अंत में ऋषियों ने जो तत्व पाया, वह ब्रह्म है। इस ब्रह्म तत्व की खोज करते-करते उन्होंने यह भी चिंतन किया, कि हमारे इस मन, बुद्धि, शरीर आदि के पीछे किसी शाश्वत तत्व का अस्तित्व है भी या नहीं। उपनिषद के विषयों की यह खोज उन्हें आत्मतत्व की स्थापना तक ले गई। उपनिषदों में यही आत्मतत्व जीव चेतना आदि नामों से जाना जाता है। किन्तु बौद्ध दर्शन में चेतना की व्याख्या इससे कुछ भिन्न तरीके से की गई है। वहाँ चेतना दीपशीखा की तरह सतत् परिवर्तनशील मानी गई है। बौद्ध दर्शन में शरीर व मन से पृथक किसी चेतना के अस्तित्व की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है। उनकी मान्यता है कि जिस तरह दीपशिखा अनवरत प्रज्जवलित हो रही है. इस क्षण जो शिखा है, वह अगले ही क्षण नहीं है। ठीक उसी तरह मनुष्य में चेतना सतत् प्रवाहमान रहती है। बौद्ध दर्शन के अनुसार मानवीय चेतना की कोई पृथक सत्ता नहीं है वरन चेतना विभिन्न अंगों की सम्मिलित सत्ता है। ये अंग ही परस्पर मिलकर मानवीय अस्तित्व को चैतन्यता प्रदान करते हैं। जिस तरह दण्ड, पहिये, लगाम, चाबुक आदि सभी के संयोग को रथ कहते हैं। उसी प्रकार रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान आदि पांच स्कंधो का संयोग को चेतना कहा गया है।

कूट शब्द : चेतना, निर्वाण, त्रिपिटक, आर्य सत्य।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

प्रस्तावना : बौद्ध दर्शन के आदि प्रवर्तक गौतम बुद्ध हैं। जिनका जन्म 563 ईसा के पूर्व वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी वन में हुआ था। इनका जन्म शाक्य कुल में हुआ था। इनकी माता 'माया देवी' तथा पिता शुद्धोदन थे । वे बचपन से ही बहुत संवेदनशील प्रकृति के व्यक्ति थे। अतएव संसार के दु:ख से व्याकुल होकर उन्तीस वर्ष की अवस्था में एक रात को गौतम घर को छोड़ और राजसुख का परित्याग कर, दु:ख नाश के उपाय को ढूंढने के लिए जंगल को चल दिये।

उरुवेला के जंगल में जाकर इन्होंने कठोर तपस्या की। अंतत: बोधगया में एक पीपलवृक्ष के नीचे आकर बोधि अर्थात् ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई और वे बुद्ध कहलाये। गौतम एक प्रकार से 'जीवनमुक्त' हो गये। बुद्ध ने प्रथम उपदेश सारनाथ में अपने ही पूर्व मित्रों को दिया जो कि बाद में उनके शिष्य बन गए। बौद्ध साहित्य बुद्ध के उपदेशों का संकलन लगभग प्रथम शताब्दी ईसवी के पश्चात् उनके अनुयायियों ने त्रिपिटकों के रूप में पाली में किया। इन त्रिपिटकों की संख्या तीन है– (1) विनय-पिटक, (2) सुत्तपिटक, और (3) अभिधम्मपिटक। जन कल्याण के लिये बुद्ध के दिये गये उपदेशों का सारांश उनके 'धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र' में पाया जाता है।

चेतना का स्वरूप : चेतना एक बहुत ही गूढ़ व रहस्यमय शब्द है। इसके साथ ही यह बहुत व्यापक भी है। यद्यपि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भिन्न-भिन्न रूपो में व्याप्त है, परन्तु इसकी वास्तविक अभिव्यक्ति मानव चेतना के उदय के साथ ही हुई। जब से मानव ने अपने अस्तित्व पर विचार करना प्रारम्भ किया, तभी से उसने देखा कि इस सृष्टि में केवल मानव को ही ज्ञानवान् होने की महत्ता प्राप्त है। इस विशेषता ने मानव को सृष्टि में बहुत ऊपर प्रतिष्ठित कर दिया और उसने ब्रह्माण्ड के रहस्यों को खोजना आरम्भ कर दिया। परन्तु जैसा कि कठोपनिषद् मे वर्णन किया है कि इन्द्रियाँ स्वभाव से बाहर के विषयों को अनुभव करने वाली बनी हैं। अत: जागने की अवस्था में जब जीवात्मा इन्द्रियों से कार्य लेता है तब इन्द्रियों को बाहर की ओर फैलाता है, जिससे उसे बाहर के विषयों का ज्ञान होता है, किन्तु अंतरआत्मा को नहीं देख पाता जिस मनुष्य ने अमरत्व की इच्छा करके अपनी इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर से खींचकर भीतर संयमित रखता है, वही दुर्लभ प्रत्यगात्मा को देख सकता है।'

बौद्ध दर्शन मे चेतना : बौद्ध दर्शन में शरीर व मन से पृथक किसी चेतना के अस्तित्व की सत्ता को स्वीकार नही किया गया है। बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार सब कुछ अनित्य, गतिशील, क्षणिक तथा परिवर्तनशील है- इसलिये आत्मा नाम की कोई नित्य वस्तु हो ही नही सकती। बौद्ध दर्शन 'विज्ञान प्रवाह' को मानता है। वर्तमान मानसिक अवस्था का कारण पूर्ववर्ती मानसिक अवस्था है। इसलिये पूर्ववर्ती अवस्था का प्रभाव वर्तमान अवस्था पर अवश्य पड़ता है। इस तरह बिना आत्मा को स्वीकार किये ही हम स्मृति का उत्पादन कर सकते है। बौद्ध दर्शन के अनुसार मनुष्य केवल एक समष्टि का नाम है। जिस तरह चक्र, धुरी, नेमि आदि के समूह को रथ कहते है। उसी तरह बाह्य रूप युक्त शरीर , मानसिक अवस्थायें और रूपहीन संज्ञा (विज्ञान) के समूह को चेतना कहते है। अन्य दृष्टि से चेतना को पांच स्कंधो का संयोग भी कहा जाता है। ये पांच स्कंध है-रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान।

रूप स्कंध में जीव का शरीर तथा इन्द्रियां आदि सम्मिलित है। वेदना में भावनाये आती है। संज्ञा में नानाविध ज्ञान, संस्कार स्कंध में पहले की स्मृतियाँ तथा धारणाये तथा विज्ञान स्कंध में चेतना (या विज्ञान) शक्ति आती है। इस प्रकार

आत्मा या चेतना इन पांच स्कंधो का पुञ्जमात्र है। चूंकि ये पांच स्कंध अनित्य है इसलिये आत्मा भी अनित्य है। बुद्ध के विषय में यह सोचना भी कि बुद्ध आत्मा को बिल्कुल ही नही मानते, एक असत्य धारणा है। "तब परिब्राजक भिक्षु वच्चगोत्त ने महान आत्मा (अर्थात् बुद्ध) से कहा, हे पूज्य गौतम प्रकृति किस प्रकार स्थित है, क्या अहं अर्थात् आत्मा है? उसके इस प्रश्न पर महान बुद्ध मौन रह गये। तब फिर हे पूज्य गौतम, अनात्म नही है? और इस पर भी महान बुद्ध ने मौन साध लिया। तब परिब्राजक भिक्षु वच्चोत्त अपने स्थान से उठा और चला गया।"[1] यहाँ एक बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि बुद्ध को तत्व ज्ञान अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार हो गया था। परन्तु आत्मा के साक्षात्कार को जीवन का मुख्य लक्ष्य समझकर भी लोगो के कल्याण के लिये तथा उन्हे उचित मार्ग पर ले जाने के लिये बुद्ध ने आत्मा के संबंध में अपने उपदेशों में कुछ नही कहा। उनके मन मे यह निश्चित ही होगा कि कर्त्तव्य पथ पर चल कर उपासना के द्वारा तपस्या की सहायता से अन्त:करण की शुद्धि पहले आवश्यक है तत्पश्चात् आत्मा से संबंधित ज्ञान जनमानस स्वयं ही समझ लेगा। आर्यसत्य- बुद्ध के सारे उपदेश चार आर्य सत्यों में सन्निहित है। ये चार आर्य सत्य इस प्रकार है-

1. **सर्वं दु:खम् ;** - संसार दु:खमय है।
2. **दु:ख समुदय: ;** - दु:खो का कारण है।
3. **दु:ख निरोध: ;** - दु:खो का अंत सम्भव है।
4. **दु:ख निरोधगामिनी प्रतिपद् ;** - दु:खो के अंत का मार्ग है।

दु:ख के अस्तित्व को सभी भारतीय दर्शन मानते है किन्तु दु:ख के कारण के संबंध मे सभी एकमत नही हैं। महात्मा बुद्ध के प्रतीत्य-समुत्पाद के अनुसार संसार का कोई भी विषय बिना कारण नही है। अत: दु:खो का की कारण भी होना चाहिये। दु:खों का सांकेतिक नाम जरामरण है। इनका कारण शरीर धारण करना अर्थात् जन्म लेना है। जन्म का कारण भव प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति का कारण है सांसरिक विषयों के प्रति हमारा उपादान अर्थात् उनमें लिपटे रहने की इच्छा। यह उपादान हमारी तृष्णाओं अर्थात् शब्द स्पर्श आदि विषय भोग करने की वासनाओं के कारण होता है। तृष्णा का कारण है इन्द्रियो के द्वारा प्राप्त वेदना (सुख की अनुमति) इन्द्रियानुभूति बिना इन्द्रिय स्पर्श के नही हो सकती। स्पर्श के लिये पांच इन्द्रियां व मन आवश्यक है। जो एक साथ मिलकर षडायतन कहलाते है। यदि गर्भस्थ शरीर और मन न हों तो शरीर षडायतन का अस्तित्व संभव नहीं है। गर्भस्थ भ्रूण के शरीर व मन को नामरूप कहते है। यदि गर्भावस्था में चैतन्य या विज्ञान न हो तो नामरूप की वृद्धि ही नही हो सकती। किन्तु गर्भावस्था में विज्ञान की संभावना तभी हो सकती है जब पूर्व जन्म के कुछ संस्कार रहे। पूर्वजन्म की अंतिम अवस्था में मनुष्य के पूर्ववर्ती सभी कर्मो का प्रभाव रहता है कर्मो के अनुसार जो संस्कार बनते है उन्ही के कारण विज्ञान संभव हो सकता है। संस्कारो का कारण है- अविद्या या मिथ्या ज्ञान है। क्षणिक, दु:खद और हेय विषयों को स्थाई, सुखद तथा उपादेय समझ लेना ही अविद्या या मिथ्याज्ञान है। तृतीय आर्यसत्य में महात्मा बुद्ध ने दु:खो के निरोध या नाश की संभावना व्यक्त की है। अविद्या की समाप्ति विद्या अथवा ज्ञान एवं अष्टांग मार्ग को अनुसरण से ही संभव है। इस मुक्तावस्था को बौद्ध दर्शन में निर्वाण कहा गया है। चतुर्थ आर्यसत्य

[1] भारतीय दर्शन/ भाग-1 / डॉ. एस.राधाकृष्णन / पेज नं. 313

में महात्मा बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति के लिये अष्टांग मार्ग बताया हैं। इनके पालन से अन्त: करण की शुद्धि होती है और ज्ञान का उदय होता है।

अष्टांगिक मार्ग :

1. **सम्यक् दृष्टि** अर्थात् (आर्य सत्यो का ज्ञान)
2. **सम्यक् संकल्प** अर्थात् राग, द्वेष, हिंसा तथा संसारी विषयों के परित्याग के लिये दृढ़ निश्चय
3. **सम्यक् वाक्** अर्थात् मिथ्या, अनुचित तथा दुर्वचनों का परित्याग एवं सत्य वचन की रक्षा।
4. **सम्यक् कर्मान्त** अर्थात् हिंसा, परद्रव्य का अपहरण तथा वासना की पूर्ति की इच्छा का परित्याग कर अच्छा कर्म करना।
5. **सम्यक् आजीव** अर्थात् न्यायपूर्ण जीविका।
6. **सम्यक् व्यायाम** अर्थात् बुराइयों का नाश कर अच्छे कर्म में उद्यत रहना।
7. **सम्यक् स्मृति** अर्थात् लोभादि को रोक कर चित्त शुद्धि।
8. **सम्यक् समाधि** अर्थात् चित्त की एकाग्रता।

इन नियमो का पालन करते हुये साधक क्रमश: अपने लक्ष्य तक पहुंचने में अग्रसर होते है और प्रत्येक स्थिति में दोषों से मुक्त हो जाते है। उपरोक्त सात मार्गो पर चलने के बाद निर्वाण की चाह रखने वाला साधक अपनी चित्तवृत्तियां का निरोध कर समाधि की अवस्था अपनाने के योग्य हो जाता है। बुद्ध ने समाधि की चार अवस्थाओं को माना है। समाधि की प्रथम अवस्था में साधक को चार आर्य सत्यों को मनन करना पड़ता हैं। यह तर्क वितर्क की अवस्था है अनेक प्रकार के संषय साधक के मन में उत्पन्न होते है, जिनका निराकरण वह स्वयं करता है।

प्रथम अवस्था के बाद सभी प्रकार के सन्देह दूर हो जाते हे। आर्य सत्यों के प्रति श्रद्धा की भावना का विकास होता है। ध्यान की दूसरी अवस्था में तर्क वितर्क की आवश्यकता नही होती है। इस अवस्था में आनन्द एवं शान्ति की अनुभूति की चेतना वर्तमान रहती है समाधि की तीसरी अवस्था का आरम्भ तब होता है जब आनन्द एवं शान्ति के प्रति उदासीनता का भाव आता है। आनन्द एवं शान्ति की चेतना भी निर्वाण–प्राप्ति के बाधक प्रतीत होती है। इसलिये इस प्रकार की चेतना से भी तटस्थ रहने का प्रयास किया जाता है इस अवस्था में आनन्द एवं शान्ति की चेतना का आभास हो जाता है। परन्तु शारीरिक आराम का ज्ञान विद्यमान रहता है। चौथी अवस्था में शरीर के आराम एवं शान्ति का भाव भी नष्ट हो जाता है। इस अवस्था में साधक शान्ति की भावना को त्याग कर पूर्ण मानसिक अनासक्ति, शान्ति और आत्म संतोष को प्राप्त होता है। यह सुख–दु:ख से परे निर्वाण की अवस्था हैं।[2]

[2] धर्मदर्शन की रूपरेखा (द्वितीय खण्ड)/ डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा/ पृष्ठ संख्या 20–21

उपसंहार : बौद्ध दर्शन यद्यपि भारतीय दर्शन है तथा इसकी संस्कृति भी भारतीय ही है तथापि इसमें चेतना का स्वरूप अन्य दर्शन से सर्वथा भिन्न माना गया है। यहाँ तक कि इसके विचार अन्य नास्तिक दर्शनों जैसे- चार्वाक तथा जैन दर्शन से भी सर्वथा भिन्न हैं। इस दर्शन की विलक्षणता इसे अन्य दर्शनों से विशेष बनाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ. एस. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन,भाग-1, दिल्ली-110006, कश्मीरी गेट, राजपाल एण्ड सन्स, संस्करण : 2008, ISBN : 978-81-7028-187-0
2. सिन्हा, डॉ. हरेन्द्र प्रसाद, धर्म-दर्शन की रूपरेखा, दिल्ली-110006, बंगलो रोड,मोतीलाल बनारसीदास, संशोधित संस्करण : 1990, पुनर्मुद्रण : 1998
3. मिश्र, डॉ. उमेश, महामहोपाध्याय, भारतीय दर्शन, लखनऊ-6, महात्मा गाँधी मार्ग, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, पंचम संस्करण :2003
4. पाण्डेय, डॉ. राज कुमारी, भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, नई दिल्ली-110002, राधा पब्लिकेशन्स, ISBN : 81-85484-70-8 संस्करण : 2008
5. कासलीवाल, डॉ. कविता, भारतीय दर्शन, जयपुर-302 003, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, ISBN : 81-7910-147-9, प्रथम संस्करण : 2006